E-ISSN: 2583-9667
Indexed Journal
Peer Reviewed Journal
https://multiresearchjournal.theviews.in

Received: 17-05-2023
Accepted: 29-06-2023

INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCE RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY

Volume 1; Issue 1; 2023; Page No. 869-872

भारतीय दर्शन परम्परा में भिन्न–भिन्न यौगिक परम्पराओं का संक्षिप्त अध्ययन

[1]कृष्णा सिंह अधिकारी, [2]डॉ. प्रवीन त्रिपाठी

[1]शोधकर्ता, ग्लोकल स्कूल ऑफ एजुकेशन, द ग्लोकल यूनिवर्सिटी, मिर्जापुर पोल, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत
[2]एसोसिएट प्रोफेसर, ग्लोकल स्कूल ऑफ एजुकेशन, द ग्लोकल यूनिवर्सिटी, मिर्जापुर पोल, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author: कृष्णा सिंह अधिकारी

सारांश

हमारी भारत भूमि चिरकाल से ही अनेक महात्माओं, विद्वानों, तपस्वियों तथा प्रतिभापूर्ण मनीषियों की जननी रही है। भारत के इतिहास में इन महापुरूषों का उदय उस दीप्तिमान नक्षत्र की भांति हुआ जिसके ज्ञान रूपी प्रकाश से यह भारत भूमि जगमगा उठी। जब–जब अधर्म की वृद्धि तथा धर्म का लोप होता गया, तब–तब धर्म की स्थापना के लिए किसी न किसी महापुरूष ने इस पावन धरती पर जन्म लिया। इन महापुरूषों ने समय–समय पर जनता की भलाई की तथा उनकी सोई हुई भावनाओं को जागृत कर उन्हें उनके कर्त्तव्य मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा दी।भारतवर्ष महात्माओं और योगियों का देश है। जिस प्रकार योग ज्ञान के बिना योगी को नहीं जाना जा सकता है उसी भांति योगी जो जाने बिना आध्यात्मिक भारत को नहीं जाना जा सकता। इसलिए कहा जाता है कि योग बिना भारत नहीं और भारत बिना योग नहीं। अतः योग साधना सनातन परम्परा है एवं प्रत्येक मनुष्य का आवश्यक कर्तव्य भी। योग–विद्या भारतवर्ष की अमूल्य निधि है, जो सुदूर अतीत काल से अविच्छिन्न रूप में गुरु–परम्परापूर्वक चली आ रही है। योग ही एक ऐसी विद्या है जिसमें वाद–विवाद को कहीं स्थान नहीं मिलता है। यही वह एक कला है जिसकी साधना से अनेक लोग अजर–अमर होकर देह रहते ही सिद्ध पदवी को पा गये हैं। युग–युगों से चला आ रहा यह योग वस्तुतः भारतीय ऋषि, मुनियों तथायोगियों के अध्यवसाय एवं साधनालब्ध अन्तर्जगत का महत्वपूर्ण अन्तर्विज्ञान है। इसी योग समाधि के द्वारा वैदिक काल में कितने ही ब्रह्ममोपासक मन्त्र–द्रष्टा ऋषि बन गये, जिनका साक्ष्य वेद की ऋचाएँ हैं।

मूलशब्दः भारतीय दर्शन, यौगिक परम्पराआ, दीप्तिमान, नक्षत्र, शिक्षा

प्रस्तावना

हमारे प्राचीन ऋषि–मुनियों ने विश्व को अहिंसा एवं सत्य का सन्देश दिया। विशेष रूप से भगवान बुद्ध तथा महावीर स्वामी जी ने तो साफ कहा था "अहिंसा परमों धर्मः"। जिसका अर्थ है सब प्राणियों से शत्रुता छोड़कर प्रेम भाव से रहना और सब कर्म मानवता की भलाई के लिए करना। इस महान देश की मिट्टी ने ऐसे अनेक महापुरूषों को जन्म दिया जो धार्मिक अन्धविश्वासों, आडम्बरों, मृत प्रायः विचारों और अर्थहीन संकीर्णताओं के विरुद्ध प्रहार करने में कुण्ठित नहीं हुये और इन जर्जर बातों से परे सबमें विद्यमान, सबको नयी ज्योति और नया जीवन प्रदान करने वाले महान जीवन देवता की महिमा प्रतिष्ठित करने में समर्थ हुए। हमारे भारत का यश और सम्मान बढ़ाने में देश के सभी भागों की विभूतियों ने योगदान दिया। इन्होंने जनता के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये। भारत में साधु–सन्तों एवं धार्मिक चिन्तकों की कमी नहीं रही। इन्होंने जाति–धर्म एवं ऊँच–नीच के भेद–भाव को व्यर्थ बताया और समाज की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया। इन्होंने भारतीय समाज को एकता के धागे में पिरोया और समाज को एक नये मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न किया। इन्होंने कोरे पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा सत्य, अहिंसा, प्रेम और भक्ति में विश्वास किया तथा मानव की भलाई करने में सदैव आगे रहे।

भारतीय मनीषा चिन्तन का प्रधान तत्त्व संसार दुःख से आत्यान्तिक निवृत्ति रूप मोक्ष की प्राप्ति है, जिसके फलस्वरूप समस्त शास्त्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से 'योग' के ही साधनाशास्त्र है जो योग रूपी लक्ष्य की सिद्धि के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से साधनारूपी योग का ही अनुशंसा करते हैं। अतः उनका लक्ष्य भी योग है और उनकी साधना भी। लक्ष्यरूपी योग सबके लिए एक समान होते हुए भी साधना रूपी योग साधक की योग्यता धारणा और मनोदशा के अनुरूप अधिकारी भेद से भिन्न–भिन्न होते है। जैसे–मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग, कुण्डलिनीयोग, ब्रह्मयोग, संन्यासयोग, अभ्यासयोग, ध्यानयोग, अध्यात्मयोग, अस्पर्शयोग, आत्मयोग, महायोग, सहजयेाग, समत्वयोग, क्रियायोग, सिद्धयोग आदि।

उपरोक्त सभी साधना रूपी योगों को मूलमनोविज्ञान के अनुसार शास्त्रकारों ने इन्हें प्रमुख रूप से ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्ति योग और राजयोग के रूप में चार प्रकार की साधनापद्यतियों में विशेषीकृत कर दिया है, जिसमें योग साधना के सभी अवान्तर भेद समाहित हो जाते हैं। मन और शरीर की क्रियाशीलता और

स्वस्थता के अनुरूप मानव स्वभाव के चार प्रकारों में जो शरीरक्रिया स्वभावी हैं, उनके लिये 'कर्मयोग', जो मनक्रिया स्वभावी हैं उनके लिये 'भक्तियोग' और जिनका मन स्वभावतः स्वस्थ है, उनके लिये ज्ञानयोग तथा जो शरीरतः स्वास्थ्य स्वभावी हैं–उनके लिये 'राजयोग' की साधना पद्यति का निर्धारण किया गया है। ध्यातव्य हो कि ज्ञान, कर्म, उपासना और मनः संयम की प्रधानता से पृथक्–पृथक् कहे जाने वाले ये साधनापथ परस्पर एक दूसरे से बिल्कुल पृथक और अन्तिम रूप से एक दूसरे के विरोधी न होकर मन, प्राण, हृदय और इन्द्रियों की भाँति ही मानव व्यक्तित्त्व की सर्वांग पूर्णता के चार आयाम है। इनका एक दूसरे से वही सम्बन्ध है जो हाथ–पाँव हृदय एवं मस्तिष्क से युक्त देह में अपने इन सभी अंगों का। इस सन्दर्भ में विवेकानन्द का कथन है– ''प्रत्येक आत्मा अव्यक्त ब्रह्म है। कर्म, उपासना, मनःसंयम, अथवा ज्ञान इनमें से एक, एक से अधिक, या सभी उपायों का सहारा लेकर अपना ब्रह्ममभाव व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ।''

ज्ञानयोगः साधक का जिस मार्ग से सम्बन्ध होता है, उसी के अनुसार उसकी साधना का नाम होता है। ज्ञानमार्ग के द्वारा सर्वोच्च अवस्था की प्राप्ति के मार्ग को ज्ञान योग कहा जाता है। यह आध्यात्मिक ज्ञान व प्रज्ञा का मार्ग है। प्रबुद्ध जन अविद्या, मिथ्यात्व व अज्ञान के अंधकार के भेदकर 'स्व' विशुद्ध चेतन या परमत्व का बोध करते हैं। ज्ञानयोग की साधना स्वाध्याय और ध्यान के मार्ग के द्वारा सम्पन्न होती है। कहा भी गया है ''ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः'' तत्त्व ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति मानसिक, भावनात्मक विकास तथा उसकी शुद्धि से प्राप्त होती है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन इसके प्रमुख साधन है। ज्ञानयोग में अज्ञान को सभी दुःखों का कारण माना जाता है। ज्ञानयोग स्वानुभूति या स्वयं का ज्ञान है। ज्ञानयोग को परिभाषित करते हुये कहा गया है–''ज्ञानयोग गहन आत्मान्वेषण के भाव से निर्देशित एक ध्यान योग है।''

गीता में 'सांख्ययोग' को भी ज्ञानयोग कहा गया है। परन्तु मुख्यतया वेदान्त की साधना को ही ज्ञानयोग के नाम से पुकारा जाता है। ज्ञानयोग की मूल मान्यता यह है कि जीव तथा ब्रह्म मूलतः एक ही है। अतः ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, नित्य है। इसके अतिरिक्त सब कुछ असत्य एवं अनित्य है। ज्ञानयोग के अनुसार जीव ब्रह्म की एकता का ज्ञान हो जाना ही मोक्ष है। दूसरे शब्दों में 'आनन्दात्मक ब्रह्मप्राप्ति और शोक निवृत्ति मोक्ष है।''

कर्मयोगः कर्म शब्द कृ धातु से बनता है। कृ धातु में 'मन' प्रत्यय लगने से कर्म शब्द की उत्पत्ति होती है। कर्म का अर्थ है–क्रिया, व्यापार, भाग्य आदि। हम कह सकते है कि जिस कर्म में कर्ता की क्रिया का फल निहित होता है वही कर्म है।

कर्म करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। तथा कर्म के बिना मनुष्य का जीवित रहना असम्भव है। कर्म करने की इस प्रवृत्ति के सम्बन्ध में गीता में कहा गया है कि 'कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता, क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है। साधारण अवस्था में किये गये कर्मों में आसक्ति बनी रहती है, जिससे कई प्रकार के संस्कार उत्पन्न होते हैं। इन्हीं संस्कारों के कारण मनुष्य जीवन–मरण के चक्र में फंसा रहता है। अर्थात् वह अपने कर्मों के कारण ही बन्धनग्रस्त भी हो जाता है। इससे तो यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य कभी भी बन्धन से मुक्त नही हो सकता। इस समस्या को सुलझाने के लिए एक तरीका निकाला गया जिसे कर्मयोग कहते है।

कर्मयोग कर्मों की सतत क्रियाशीलता में भी साधना का ऐसा विधान प्रस्तुत करता है कि जल में कमलपत्र की भाँति सदा–सर्वदा निर्लिप्त रहते हुए साधक परमसिद्धि को प्राप्त कर ले। इसमें मनुष्य कर्म भी करता रहता है और कर्म बन्धन कारक भी नहीं होते क्योंकि उसमें कर्म निष्काम होकर किये जाते है। अतः फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करते हुए भगवत् प्राप्ति के मार्ग को कर्मयोग कहा गया है।

कर्मयोग के अनुसार बन्धन का मूलकारण कर्ममात्र नहीं वरन् कर्मों में आसक्ति ही है। जिसके वशीभूत मनुष्य स्वार्थ प्रेरित कामनाओं की पूर्ति के लिए कर्म करता है और कर्मों के शुभाशुभ फल के अनुरूप स्वर्गादि सुख एवं नारकीय यातनाओं का भोग करता हुआ मर्त्यलोक में बार–बार जन्मता और मरता रहता है। आवागमन का यह चक्र तब तक चलता रहता है, जब तक वह ''निष्कर्मता'' को प्राप्त नही हो जाता।

निष्कर्मता की सिद्धि ही कर्मयोग की सारवस्तु है। इसलिए गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि ''हे अर्जुन''। तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मों का सम्पादन कर।'' तू सकाम कर्म का परित्याग कर समत्वरूप बुद्धियोग का आश्रय ग्रहण कर। ''क्योंकि पाप और पुण्य दोनों से ही मुक्त यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता अर्थात् कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है।

कर्मों में और उसके फलों में आसक्ति से व्यक्ति कर्मों के बन्धन में बधता है कार्य में बाधा आने पर उसे कष्ट होता है परन्तु 'कर्मफल का त्याग करके योगी शाश्वत शान्ति को प्राप्त होता है' ''क्योंकि उसे सफलता एवं असफलता से कोई लगाव नहीं रहता है। कर्मफल का त्याग न करने वाले मनुष्यों के कर्मों का तो अच्छा–बुरा और मिश्रित ऐसे तीन प्रकार का फल मरने के पश्चात् अवश्य होता है, किन्तु कर्मफल का त्यागकर देने वाले मनुष्यों का फल किसी काल में भी नहीं होता है। अपितु स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्मरूप यज्ञ कर्म को करता हुआ वह पाप से रहित अपने पूर्व संचितकर्म एवं उसके फलों का भी उल्लंघकर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

कर्मयोग की साधना में रत व्यक्ति में उच्च अवस्था की स्थिति आने पर स्वयं कर्ता की भावना समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में साधक अनुभव करता है कि मेरे द्वारा जो कर्म किये जा रहे हैं, उन सबको करने वाले ईश्वर ही हैं। इस प्रकार से साधक कर्म करता हुआ भी बन्धन से मुक्त रहता है। उसके द्वारा किये गये कर्म से किसी भी प्रकार के संस्कार उत्पन्न नहीं होते। इस प्रकार के कर्म मुक्ति को दिलाने वाले होते हैं।

कर्मयोग साधना का एक ऐसा मार्ग है जिससे लौकिक और पारमार्थिक दोनों पक्षों का उत्थान होता है। कर्मयागे की प्रशंसा करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा है कि सब योगों का सम्राट निष्काम कर्मयोग है। कर्मयोग संसारी पुरूषों के लिए एक उचित और स्वभाविक मार्ग है।

भक्तियोगः ज्ञानयोग एवं कर्मयोग के लिए भक्ति को होना भी आवश्यक है, क्योंकि भक्ति के बिना निष्काम कर्म नहीं हो सकता है। जब साधक भक्तियोग के माध्यम से अपना सर्वस्व भगवान को अर्पित कर देता है तो उसकी सांसारिक पदार्थों में आसक्ति समाप्त हो जाती है। तभी परामात्मा को जान पाता है। भाव प्रधान साधकों के लिए भक्तियोग की साधना अधिक उपयुक्त है। इस मार्ग में साधक का चित्त आसानी से एकाग्र हो जाता है। यह मार्ग अतिसरल होने के कारण जनसाधारण में काफी लोकप्रिय व प्रचलित है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार 'सच्चे और निष्कपट भाव से ईश्वर की खोज को भक्ति योग कहते है। परमभक्त नारद के अनुसार 'भगवान के प्रति उत्कट प्रेम ही भक्ति है। शाण्डिल्य सूत्र के अनुसार 'ईश्वर में परमानुराक्ति ही भक्ति है'।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भक्तियोग में किसी न किसी रूप में भगवान को मानना आवश्यक है और उसके प्रेम में

डूबकर उसके साथ एकीभूत हो जाना ही भक्तियोग का लक्ष्य है। यह भक्ति स्वयं फलरूपा है। भक्तगण भक्ति के लिये ही भक्ति करते है। अवएवं यह भक्ति स्वयं साध्य भी है और स्वयं अपना साधन भी। भक्ति की प्राप्ति भक्ति से ही होती है। इस प्रकार साध्य एवं साधनरूप भक्ति का नाम ही भक्तियोग है। फलस्वरूप होने से यह भक्ति ज्ञान, कर्म और योग से भी श्रेष्ठतर मानी गयी है। वस्तुतः ज्ञानयोग एवं कर्मयोग दोनों ही साधनापथों की परानिष्ठा यह पराभक्ति ही है। दोनों प्रकार के साधक अन्त में इस पराभक्ति को ही प्राप्त होते हैं।

आचार्य रामानुज के अनुसार भक्ति की प्राप्ति विवेक विमोक, अभ्यास, क्रिया, कल्याण, अनवसाद और अनुद्धर्ष से होती है'। मनुष्य जब अपने को बन्धन से मुक्त होने में असमर्थ पाता है तो वह भगवान् की शरण में जाता है तथा बन्धन से मुक्ति के लिए उनसे प्रार्थना करता है।

भक्तियोग की विशेषता यह है कि साधक में वैराग्य भगवान् के प्रति परमअनुराग से उत्पन्न होता है। ज्यों–ज्यों साधक का भगवत् प्रेम बढ़ता चला जाता है त्यों–त्यों अन्य वस्तुओं से वैराग्य बढ़ता चला जाता है। भगवत् प्रेम उत्पन्न कर देने के लिए भक्तियोग में बाह्यानुष्ठान और क्रिया–कलापों का सहारा लिया जाता है। जैसे पूर्णज्ञान से पूर्णभक्ति प्राप्त होता है उसकी प्रकार पूर्ण भक्ति के उदित होने से पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। जब मनुष्य भक्ति को प्राप्त कर लेता है तो वह किसी से घृणा नहीं करता बल्कि 'सभी उसके प्रेम पात्र बन जाते है।

राजयोगः 'राजत्वात्सर्वयोगानां राजयोग उदाहृतः' इस व्युत्पत्ति के आधार पर राजयोग को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि यह पूर्णकालिक या उत्तम अधिकारी के लिए सवे नीय है। योगशिखोपनिषद् में रजस् तथा रेतस् के संयोग को राजयोग कहा गया है। कुछ आचार्यों ने मन को इन्द्रियों का स्वामी मानते हुए मन के योग (राज) अर्थात् मनोविजय को राजयोग माना है। वस्तुतः राजयोग मूल रूप से समाधियोग की साधना पद्यति है, जिसमें इन्द्रिय, प्राण और मन की समस्त क्रियाओं को ज्ञान से प्रकाशित आत्मसंयम रूप योगाग्नि में हवनकर योगी परमकैवल्य को प्राप्त हो जाता है। राजयोग की साधनामात्र तर्क और विचार की पद्यति नहीं है बल्कि सहजज्ञान और तर्क को अतीन्द्रिय आनुभविक ज्ञान में रूपान्तरित कर देने का साक्षात् प्रयोग है। राजयोग के अनुसार वास्तविक ज्ञान, विचारणा का ज्ञान न होकर वह 'योगज प्रत्यक्ष' है जो 'योग–साधना' के द्वारा ही संभव है, और केवल वही है जो साक्षात् मुक्ति प्रदान करने वाला है।

चूँकि राजयोग की साधना अन्तर और बाह्य प्रकृति के विजय की प्रत्यक्षरूप से आनुभूतिक साधना है। इसमें बहिरंग साधना के रूप में षटकर्म, आसन, बन्ध, मुद्रा और प्राणायाम है जो हठयोग से सम्बन्धित है। स्वात्माराम योगी ने हठयोग को राजयोग की प्रोन्नति करने वाली सीढ़ी कहा है। राजयोग के अनुसार चित्त की चंचलता ही जीवात्मा के लिये उसके निर्मल आत्मस्वरूप की प्राप्ति की मुख्य बाधा है। अतः चित्त की चंचल वृत्तियों का निरोध ही उसकी मूल साधना है। पतंजलि का राजयोग वस्तुतः चित्तवृत्ति निरोध मूलक है। जिसे अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। पतंजलि का अष्टांगयोग में समाधि को उच्चतम् उपलब्धि माना जाता है। पतंजलि का अष्टांगयोग राजयोगांग की साधना कला है। राजयोग की अन्तरंग साधना के क्रम से जब चित्त को किसी देश विशेष में धारण करने से जब साधक ध्यान की परिपक्वावस्था को प्राप्त कर समाधि में स्थित होता है तथा जब यही सम्प्रज्ञात समाधि असम्प्रज्ञात समाधि में परिणत होता है तो साधक कैवल्य को प्राप्त हो जाता है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि राजयोग मनः संयम के द्वारा मन के शक्ति को पूरी तरह समाहित कर सत्ता के वास्तविक सत्य तक पहुँचने का साधनापथ है।

मन्त्रयोगः शास्त्रों में वर्णित योगों में मन्त्रयोग की साधना सबसे सरल एवं सुगम है। श्रद्धापूर्वक की गयी मन्त्र साधना से शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर अभीष्ट की प्राप्ति की जा सकती है। शास्त्रोक्त मन्त्र एवं इष्टदेव के रूप का ध्यान करते–करते चित्तवृत्तिनिरोध से मोक्षपथ में अग्रसर होने का नाम मन्त्रयोग है। मन्त्र का सामान्य अर्थ ध्वनि कम्पन से लिया जाता है। मन्त्र विज्ञान ध्वनि के विद्युत रूपान्तर की साधना है। शास्त्रों के अनुसार–

'मननात् तारयेत् यस्तु स मंत्र परकीर्तितः।'

अर्थात् यदि हम जिस इष्टदेव का मन से स्मरण कर श्रद्धापूर्वक, ध्यान कर मंत्रजप करते हैं और वह दर्शन देकर हमें इस भवसागर से तार दे वहीं मन्त्रयोग है। मन्त्रयोग का सिद्धान्त है कि सृष्टि नामरूपात्मक है। अतः नाम–रूप के अवलम्बन से ही साधक सृष्टि के बन्धन से अतीत होकर मुक्तिपद को प्राप्त कर सकता है। चूंकि यह स्पष्ट है कि मनुष्य जिस भूमि पर गिरता है, उसी को अवलम्बन बनाकर उठता भी है। चित्त की वृत्तियाँ नामरूप के अवलम्बन से ही अन्तःकरण को चंचल बनाती है। अतः नामरूप का अवलम्ब नामरूपात्मक जगत् से मुक्ति का भी साधन है।

महर्षि पतंजलि ने 'तज्जपस्तदर्थभावनम' कहकर मन्त्रयोग की इसी साधना की ओर इंगित किया है क्योंकि जप के अतिरिक्त मन्त्र के हृदय तक पहुंचने के लिए अन्य कोई उपाय नहीं है।

मन्त्र जप के अनुरूप ही अन्तःकरण की शुद्धि भी होती रहती है। जप से शुद्धि तथा शुद्धि से साधना में गहराई बढ़ती जाती है। तन्मयता से तल्लीनता और तल्लीनता से तद्रूपता का क्रम चल पड़ता है। मन्त्र साधक, मन्त्र जप की शक्ति से तद्रूप होने लगता है, उसके अन्दर अलौकिक शक्तियों का जागरण होने लगता है। अर्थात् सिद्धि प्राप्त कर लेता है और समाधि की सिद्धि भी हो जाती है। मन्त्रों का विधिपूर्वक जप करने से साधक आकाश–गमन तथा अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त करता है। नारायणतीर्थ का कहना है कि होम, पूजा आदि जनित सिद्धियां मन्त्र प्रधान होने से मन्त्रजासिद्धि के अन्तर्गत आती है। योगराजोपनिषद् के अनुसार, ''मन्त्रयोग में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि के मन्त्र का जप कर वत्सराज आदि के समान सिद्धि प्राप्त की जाती है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि मन्त्र से भी सिद्धि मिलती है, बल्कि मन्त्रजा सिद्धि की प्राप्ति होना अन्य कठिन योगों से सरल हे। इसे महर्षि पतंजलि भी स्वीकार करते हैं। वेदों में मन्त्र द्रष्टा को ही ऋषि कहा गया है।

हठयोगः हठयोग में 'हकार' (ह) का अर्थ सूर्य और ठकार (ठ) का अर्थ चन्द्र कहा जाता है। हकार और ठकार का योग अर्थात् सूर्य और चन्द्र के मिलन को हठयोग कहते हैं। सूर्य पिंगला नाड़ी को कहते हैं तथा चन्द्र इड़ा नाड़ी को कहते हैं। अतः इड़ा और पिंगला नाड़ियो में प्राणवायु के संचार को रोककर सुषुम्णा नाड़ी में प्राणवायु का संचार करने को हठयोग कहा जाता है। सूर्य से तात्पर्य प्राणवायु का तथा चन्द्र से अपान वायु का है। इन दोनों का योग हठयोग है। अतः प्राणायाम के माध्यम से वायु का निरोध करना हठयोग है। शिवसंहिता के अनुसार, जिसमें प्राण और अपान, नाद और बिन्दु, जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाता है। इसी को घट अवस्था या हठयोग कहते हैं। योग और आयुर्वेद विज्ञान में डॉ0 शिवचरण योगी कहते हैं– ''स्थूल शरीर के माध्यम

से सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करके चित्तवृत्तियों का निरोध करना ही हठयोग है।'' हठयोग के विषय में स्वात्माराम जी 'हठयोग–प्रदीपिका' में कहते हैं– ''केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते।।'' अर्थात् केवल राजयोग (समाधि) के लिए ही हठयोग का उपदेश किया जा रहा है।

हठयोग की साधना के सात अंग बताये गये हैं, जिन्हें हठयोग के सप्तांग भी कहा जाता है। जो इस प्रकार है– षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि। हठयोग के सप्तसाधनों से प्राप्त होने वाले लाभों का वर्णन करते हुए घेरण्ड संहिता में कहा गया है कि षष्टकर्मों से शरीर का शोधन होता है, आसनों से शरीर में दृढ़ता आती है। मुद्राओं से स्थिरता आती है, प्रत्याहार से धैर्य की प्राप्ति होती है, प्राणायाम से शरीर में लघुता आती है, ध्यान से आत्मसाक्षात्कार की स्थिति प्राप्त होती है और समाधि से निर्लिप्तिभाव आने पर मुक्ति अवश्य ही प्राप्त हो जाती है, इसमें संदेह नहीं है।

कुण्डलिनी योगः कुण्डलिनी ऊँकार स्वरूपा व्यापक परब्रह्म की शक्ति स्वरूपा, व्यष्टि रूप से मानव देह में केन्द्रभूत जीवनी शक्ति है, जो कि 72,000 नाड़ियों का षट्चक्रों द्वारा संचालन करती है। कुण्डलिनी ही समस्त योगों का आश्रय है। इस शक्ति का बोध होने से योगी को सहजावस्था की प्राप्ति स्वयं हो जाती है। तन्त्रशास्त्र के अनुसार, यह कुण्डलिनी अन्य कुछ नहीं अपितु परमेश्वर की संविन्मात्र रूपा विसर्ग शक्ति ही है, चूंकि यह निखिल विश्व को अपने गर्भ में समाविष्ट करके स्थित है, इसलिये यह कुण्डलिनी कहलाती है। यह विश्व का बीज है, परमार्थरूप में यह चिद्रूपा है, संसार में जीवरूपिणी भी यही है। यह तो परमेश्वर के विपुल देह से टूटकर संसार में गिरा हुआ एक अंश है, जिसे जीव नाम दिया गया है। कुण्डलिनी की सुप्तावस्था में ब्रह्ममार्ग बन्द रहता है। इस अवस्था में जीव अन्नमय कोष में पड़ा रहता है। तथा स्थूल शरीर प्राप्त करके जन्म–मरण के चक्र में पड़ा रहता है, परन्तु साधक योगसाधना के माध्यम से सुप्तावस्था में पड़ी कुण्डलिनी को जागृत कर कालचक्र के बाहर निकलकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त का अवलोकन करने पर यह प्रश्न उठाता है। कि पतंजलि–वर्णित ये उपाय परस्पर भिन्न हैं। या अभिन्न यदि भिन्न हैं तो पतंजलि का पक्ष क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि पतंजलि विविध योग पद्यातियों का दार्शनिक समीक्षक मात्र है न कि योग का प्रवर्तक। अर्थात् पतंजलि से पूर्व योग साधना के क्षेत्र में अनेक पद्धतियाँ प्रचलित थीं। ईश्वर–भक्तियोग (ईश्वर प्रणिधान), विपश्यना (प्राणों का अवक्षे ाण), योगनिद्रा (स्वप्न आदि का अवलम्बन), जैनों का वैराग्य (वीतरागविषयता), पंचशिख का सांख्ययोग (विशोका प्रवृत्ति) तथा तन्त्रयोग (विषयवती प्रवृत्ति) के अन्य प्रकारान्तर जो आज किसी न किसी रूप में प्राप्त होते हैं, पतंजलि से पूर्ववर्ती हैं। पतंजलि ने इन सभी साधना पद्धतियों को संकलित किया है और उनकी पद्यतियों के विश्लेषण में न पड़कर उनकी दार्शनिक समीक्षा की है, एवं योग साधना के दर्शन को प्रस्तुत किया है। साथ ही इन साधनाओं की सीमा का संकेत भी किया है। महर्षि पतंजलि के अनुसार, साधना के उपर्युक्त सभी मार्ग सबीज समाधि तक पहुँचते हैं। अभ्यास और वैराग्य की साधना पूर्ण साधना है, सवितर्का समाधि तक किसी भी मार्ग से पहुंचने पर यदि पर वैराग्य के साथ अभ्यास आगे भी चलता रहा तो इन विविध मार्गों से प्राप्त उपलब्धियों का त्याग होने पर निर्विचार समाधि की सिद्धि होती है। यही योग साधना की चरम उपलब्धि है।

संदर्भ

1. 'महराज', स्वामी कृष्णानन्द जी–स्वर से समाधि विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 2015
2. शर्मा, डॉ0 राघवेन्द्र राघवः– घेरण्ड संहिता, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2011
3. शिवानन्द–पातञ्जल योगामृत–सर्वसेवा संघ–प्रकाशन राजघाट–वाराणसी, उ0 प्र0, 2011
4. मिश्र, डॉ0 श्रीनारायण–पातञ्जलयोग दर्शनम्, भारतीय विद्या प्रकाशन बंग्लो रोड जवाहर नगर दिल्ली, 1992
5. सिंह, प्रो0 रामहर्ष, काय चिकित्सा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान बंग्लो रोड जवाहर नगर नई दिल्ली, 1993
6. भारती, परमहंस स्वामी अनन्त–पातञ्जल योगशास्त्रः एक अध्ययन, मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान नई दिल्ली, 2007
7. भट्टाचार्य, डा. रामशंकर–योगसार–संग्रह, भारतीय विद्याप्रकाशन वाराणसी–1989
8. पाठक, आचार्य चिन्तानारायण–योगसार संग्रह, चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी, 2015
9. श्रीवास्तव, सुरेशचन्द्र–पातञ्जलयोगदर्शनम्, चौखम्बा सुभारती प्रकाशन वाराणसी, 2012
10. सरस्वती स्वामी विवेकानन्द–योगदर्शन पातञ्जल विवेक, श्री हेमेन्द्रकुमार, साधन, कार्यालय, मथुरा, सं0 वि0 2017
11. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द–घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार–2004
12. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द–प्राण प्राणायाम प्राण विद्य योगपब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, 2001
13. स्वामी प्रमेशानन्द–पतञ्जलि योग सूत्र, अद्वैत आश्रम, 5 डिही एण्टाली रोड़, कोलकाता, 2015
14. दशौरा, नन्दलाल–पातञ्जल योगसूत्र, रणधीर प्रकाशन रेलवे रोड हरिद्वार, 2006
15. छान्दोग्योपनिषद्..... सानुवाद शांकरभाष्य सहित, गीताप्रेस गोरखपुर, सातवाँ संस्करण सं0 2050
16. चन्द्र प0 मिहिर–हठयोग प्रदीपिका, खेमराज, श्रीकृष्णदास प्रकाशन मुम्बई–2006
17. गोस्वामी, डॉ0 महाप्रभुलाल–पातंजलयोगसूत्रम्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी–2012
18. गौतम, डॉ0 चमनलाल–प्राणायाम के असाधारण प्रयोग, संस्कृति संस्थान वेदनगर, बरेली, 2010

Creative Commons (CC) License
This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.